भारतीय संस्कृति में धर्म एवं अध्यात्म

डॉ. अभिनेष सुराना
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिंदी
शास.वि.या.ता.स्नातको.स्वशासी महा.दुर्ग (छ.ग.)
abhineshsurana@gmail.com

संस्कृति एक सामाजिक विरासत है। भारतीय संस्कृति अति प्राचीन एवं भव्य रही है। वास्तव में मानव को मनुष्यता की ओर प्रेषित करने वाले आदर्शों, आचार. विचारों, धार्मिक कार्यों, एवं अनुष्ठानों की समष्टि का नाम ही संस्कृति है। एक समय ऐसा भी था जब भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म का बहुत बोल-बाला था। भारतवर्ष धन-धान्य से परिपूर्ण वैभवशाली देश था इसलिए भारत देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसके साथ-साथ हमारा देश, कला, संगीत, उद्योग एवं विद्या के क्षेत्र में भी अग्रणी था। इतिहासकारों के अनुसार किसी देश का कलात्मक और बौद्धिक विकास संस्कृति है। आज के युग में यदि हम भारतीय सभ्यता और संस्कृति का जीवंत रूप देखना चाहें तो हमें उसके दर्शन गाँवों में होते है। गाँव में उपस्थित विभन्न कलाएँ, लोक-पर्व, विविध संस्कार, धार्मिक प्रथाओं, रीति-रिवाजों, ग्रामीण खेलकूद एवं प्राचीन परंपराओं आदि अनेक अवयवों के योग से संस्कृति का निर्माण होता है।

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी प्राचीनता एवं महत्ता का परिचायक होती है। भारतीय संस्कृति अपने अंदर लोक एवं वेद दोनों की मर्यादा को समाहित किए हुए हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण, धार्मिक साहित्य आदि विभिन्न ग्रंथों में भारत राष्ट्र की संस्कृति का गहनतम विश्लेषण उपलब्ध हैं। वहीं दूसरी तरफ वैदिक संदर्भों का भी सांगोपांग वर्णन मिलता है। आज हम जिस भारत राष्ट्र की संकल्पना कर रहे हैं उसके मूल प्राचीन भारतीय संस्कृति की मजबूत पृष्ठभूमि है। किसी साहित्यकार ने बिल्कुल सत्य कहा है–

"इतिहास गा रहा है, दिन रात गुण हमारा।
दुनिया के लोग सुन लो, यह देश है हमारा।।

इस पर जन्म लिया है, इसका पिया है पानी।
माता है यह हमारी और है पिता हमारा।"[1]

यहाँ हम भारतीय संस्कृति की चर्चा कर रहे हैं तो हमारा दायित्व यह भी है कि हम संस्कृति शब्द के वास्तविक अर्थ को जानने का प्रयास करें। संस्कृति को समझने के लिए 'समकृति' का बोध होना जरूरी है 'कृति' अर्थात रचना। जिस प्रकार एक शिल्पी छेनी और हथौड़ी की सहायता से साधारण पत्थर में से तराशकर सुंदर मूर्ति का निर्माण करता है। ठीक उसी प्रकार माता-पिता, गुरु, मित्र-सखा आदि के संस्कार सिंचन द्वारा एक साधारण मनुष्य को सुंदर और संस्कारी बनाते हैं। चूँकि एक सभ्य व्यक्ति संस्कारी होता है, इसलिए हम कह सकते हैं कि संस्कार एवं सभ्यता दोनों आपस में जुड़े हैं।

हिंदी विश्वकोश के अनुसार–"संस्कृति उस समुच्च का नाम है जिसमें ज्ञान. विश्वास, कला, नीति, विधि, रीति-रिवाज का समावेश रहता है, जिनमें मनुष्य समाज को सदस्य के रूप में मानता है।

टेलर के अनुसार–संस्कृति वह जटिल संपूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा एवं इसी तरह की अन्य क्षमताएँ व आदतें शामिल हैं। जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है।"

डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–"संस्कृति विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।"

रामधारी सिंह 'दिनकर' अपने ग्रंथ में लिखा है–"संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महान चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध।"

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विभिन्न विचारकों का संस्कृति के संबंध में विविध मत हो सकता है। लेकिन सभी विद्वान किसी-न-किसी रूप में यह स्वीकार करते हैं कि संस्कृति में सभ्यता और संस्कार का विशेष महत्त्व है जो मानव को मानव बनाने वाले आध्यात्मिक मूल्यों से संबंध रखती है। हिंदी विश्वकोष में ज्ञान-विश्वास, कला, नीति, विधि, रीति-रिवाज आदि को संस्कृति माना है और मनुष्य समाज को उसका एक भाग माना है।

संस्कृति के अंतर्गत समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक व्यवस्था का सम्मिलित प्रवाह निरंतर गतिमान रहता है। संस्कृति वस्तुतः व्यक्ति और समाज के मानसिक विकास का परिचायक है। लोकजीवन तो इसी संस्कृति का कुबेर है। संस्कृति शताब्दियों के विकास का परिणाम है। भारतीय संस्कृति के विकास में विभिन्न युगों में माँग के अनुसर परिवर्तन होते हैं। संस्कृति पर अपना मत व्यक्त करते हुए डॉ. महावीर अग्रवाल लिखते हैं कि–"वर्तमान में विकसित

किसी देश की संस्कृति का मूल उद्‌गम वहाँ का लोक जीवन ही है, क्योकि लोक-संस्कृति ही तो मानव की सामूहिक ऊर्जा का स्त्रोत होती है। लोक जीवन का रस ही समाज की जड़ों को सींचता है।"[3] लोक संस्कृति तो लोक परंपराओं में लोक साहित्य, लोकनाट्य, लोक कला, लोकगीत में सहज आत्मीयता के साथ दिखलाई पड़ता है। जनकल्याण की भावना से आपूरित लोक संस्कृति ने हमेशा लोक धर्म के माध्यम से ही अनुभूति और यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। उसके जीवन-मूल्य हमारी धरोहर हैं। लोक संस्कृति की यह जो शक्ति है उसकी विज्ञान सम्मत धारणा के ही कारण है। संस्कृति मनुष्य की जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। यही कारण है कि सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी अपनी संस्कृति को समझता है और उसी के अनुरूप आचरण करता है। इस तरह संस्कृति तो किसी समाज के उन संस्कारों के रूप में होती है जिनके द्वारा एक निश्चित दिशा में कार्य करने का निर्देश प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि इसमें अनेक संस्कृतियों का संगम हुआ है। भारतीय संस्कृति हिंदू संस्कृति है या इसे वैदिक संस्कृति भी कह सकते हैं। जो मूल रूप से सिंधु संस्कृति है। भारतीय संस्कृति में वैदिक कालीन संस्कृति, रामायण कालीन संस्कृति, महाभारत कालीन संस्कृति, बौद्ध कालीन संस्कृति, जैन कालीन संस्कृति, मुगल कालीन संस्कृति, अँग्रेजी कालीन संस्कृति, एवं आधुनिक संस्कृतियों का योग है। भारतीय संस्कृति समन्वयवादी संस्कृति है यह सभी संस्कृतियों का समन्वय करती है। इसमें धर्म या जाति को समानता से आदर दिया जाता है। भारतीय संस्कृति ने अन्य सभी संस्कृतियों को अपनाया है इसलिए वह सभी के द्वारा पूजनीय है और इसलिए इस संस्कृति को सभी आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति सर्वव्यापी होने के साथ-साथ बहुत प्राचीन है। इसकी कई अंगों का विकास ई.सा. से कई शताब्दी पहले ही हो गया था। मिस्र, यूनान और बेबीलोन की सभ्यता को प्राचीन माना जाता है परंतु वैदिक सभ्यता उससे भी प्राचीन है। भारतीय संस्कृति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें त्याग पर बल दिया गया है। त्याग एक महामंत्र माना गया है जिसके द्वारा सभी सुखी रह सकते हैं। भारत की संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति की तरह भोग का उपदेश न देकर योग का उपदेश देती है और योग के माध्यम से सबको जोड़कर रखती है। त्याग के साथ तपस्या भी भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इसके लिए तपोवन को अधिक महत्त्व दिया गया है। मनुष्य जीवन अंतिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति के लिए एकांत में शांत वातावरण में साधना करना है। इतिहास गवाह है बहुत से सिद्ध पुरुषों में सांसारिक मोहमाया को त्यागकर, गृहस्थ जीवन से दूर रहकर तपस्या के माध्यम से ईश्वर की साधना की है।

आश्रम व्यवस्था

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को उपहार-स्वरूप स्वीकार करते हुए। इसकी सार्थकता हेतु चार प्रमुख भागों में विभाजित किया। यथा-जन्म से प्रारंभिक 25 वर्ष की आयु, तत्पश्चात् युवावस्था से प्रौढ़ावस्था 25 से 50 वर्ष की आयु, और प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था 50 से 75 वर्ष की आयु तथा वृद्धावस्था से अंतिम समय 75 से 100 वर्ष तक। प्रथम चरण ब्रह्मचर्य व्यवस्था के अंतर्गत विद्यार्थियों को धर्म, अध्यात्म, समाज, ज्ञान-विज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ संस्कारों की जन्म घुट्टी रक्त परिसंचरण में घोली जाती थी ताकि आगे चलकर परिवार, ग्राम, नगर, प्रदेश तथा समाज के प्रति स्वयं के दायित्व एवं कर्तव्यों का निष्ठा एवं समर्पण भाव से निर्वहन करते हुए 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' के लक्ष्य-प्राप्ति में भागीदार बन सकें। द्वितीय चरण गृहस्थ के अंतर्गत परिवार के सहयोग से तथा परिवार को सहयोग करते हुए धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा एवं ऊर्जा प्राप्त होती थी। परिवार के साथ ग्राम, नगर, प्रदेश, राज्य तथा समाज की सर्वांगीण प्रगति में योगदान प्रदान किया जाता था।

वर्ण-व्यवस्था

परिवार से लेकर समाज तक की संपूर्ण व्यवस्था को निष्कंटक रूप से संतुलित एवं संचालित करने हेतु हमारे मनीषियों ने वर्ण व्यवस्था की अवधारणा दी, किंतु यह व्यवस्था केवल वर्ण पर ही आधारित न होकर कर्म एवं गुण पर आधारित थी। उदाहरण स्वरूप चारों वर्णों के अंतर्गत प्रथम स्थान पर ब्राह्मण (जिसका कार्य केवल विद्या, पठन-पाठन, चिंतन-मनन, शिक्षण, धार्मिक कार्य, उपदेश तथा प्रवचन था) द्वितीय स्थान क्षत्रिय (जिसका कार्य केवल शासन, प्रशासन तथा सुरक्षा था), वैश्य (इसका स्थान तृतीय था तथा इसका कार्य कृषि, उद्योग, व्यापार आदि था) तथा चतुर्थ स्थान पर शूद्र था (जिसका कार्य केवल और केवल उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था) यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय की संतान अयोग्य, भ्रष्ट, अकुशल अथवा दुराचारी हो अर्थात् अवगुणों से परिपूर्ण हो तो उसका स्थान चौथे वर्ण में स्वीकार किया जाता था। किंतु यदि वैश्य अथवा शूद्र की संतान अत्यंत उच्च कोटि के गुणों से संपन्न हो तो उसका स्थान प्रथम वर्ण में मान लिया जाता था अर्थात तात्पर्य है कि कर्म और योग्यता से ही कोई व्यक्ति साधारण से असाधारण अथवा सज्जन से दुर्जन बन सकता है। रावण, प्रहलाद, कंस, विभीषण तथा सुग्रीव आदि पौराणिक चरित्रों से उपरोक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है। यहाँ कवि दिनकर की पंक्तियाँ स्मरण में आती हैं जिसमें उन्होंने जातिगत भेदभाव की संकुचित सीमाओं को महत्त्वहीन

निरूपित करते हुए गुणों की सर्वोत्कृष्टता पर बल दिया है। कवि की मान्यता है कि व्यक्ति की प्रगति उसकी जाति से नहीं अपितु उसके गुणों से होती है–

"बड़े वंश से क्या होता है खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र नहीं है नहीं वंश धन धाम।"[4]

जब-जब भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की चर्चा होती है तो धर्म एवं अध्यात्म स्मृति में आते हैं क्योंकि धर्म एवं अध्यात्म भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। धर्म को सनातन और शाश्वत कहा गया है। अध्यात्म तत्त्व की अनुभूति के लिए धर्म ही एक मार्ग बताया गया है, इसलिए हम यहाँ पर धर्म एवं आध्यात्मिक चर्चा करना आवश्यक समझते हैं।

धर्म की अवधारणा

भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि स्वयं भारतीय संस्कृति अर्थात् भारत आदिकाल से धर्म को मानने वाला राष्ट्र रहा है। इस राष्ट्र में आस्तिक लोगों की संख्या बहुतायत है कुछ अपवाद को छोड़कर। भारतीय संस्कृति से धर्म का इतना अटूट संबंध है कि यहाँ के निवासी धर्म के नाम पर अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि भारतीय धर्म हमें अहिंसा, त्याग, शांति, सदाचार एवं सत्य के पथ पर चलते हुए शांति प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। धर्म में आस्था होने के कारण सदाचारी व्यक्तियों की संख्या सबसे अधिक भारत में है। धर्माचरित व्यक्ति की उसके परिवार, समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में सनातन धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि धर्मावलंबी निवास करते हैं। भारत की संस्कृति सभी धर्मों को आदर देती है। भारत में मानवता को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वास्तविकता यह है कि धर्म में मानवता तथा मानवता में धर्म एक-दूसरे के पूरक हैं।

अध्यात्म

अध्यात्म एवं धर्म की सत्ता चारो युगों में स्थापित रही है। जीव भौतिक जगत का अंश नहीं अपितु ईश्वर का अंश है इसे स्वीकार करना ही अध्यात्म है। इसलिए जीव का स्वभाव अध्यात्मिक है जबकि शरीर का स्वभाव भौतिक है। शरीर जीवात्मा पर निर्भर है और जीवात्मा शरीर को त्याग देता है तब शरीर का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। आध्यात्मिक जगत में समस्त जीव-जंतु को ईश्वर का अंश अर्थात एक समान माना गया है। आध्यात्मिक जगत में किसी भी योनि में जन्म लिए शरीर को असत्य एवं अस्थाई माना गया है क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है परंन्तु जीवात्मा की मृत्यु कभी हो नहीं सकती।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं सभ्यता, संस्कार, धर्म, अध्यात्म, राष्ट्रीयता, और समन्वयवाद आदि सर्वश्रेष्ठ जीवन-मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति स्वयं में श्रेष्ठ है। इस संपूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति का दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

संदर्भ

1. अभिव्यक्ति पत्रिका, सत्र-2013, प्रकाशन शास. बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.) पृष्ठ संख्या-97
2. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ संख्या-652
3. सिंह, डॉ. बंश गोपाल, सचदेव, डॉ. राजकुमार, सत्यान्वेषी राष्ट्र : भारत, पंडित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर,495009
4. शर्मा, डॉ. शिवकुमार, भारतीय राष्ट्रवाद, संकल्प प्रकाशन नौबस्ता कानपुर 208021 पृष्ठ संख्या- 306
5. अखिल भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा, बोध माला 9 एवं 12,विद्या भारतीय सरस्वती शिक्षा संस्थान द्वारा संचालित।